ॐ

श्री परमात्मने नमः

समाधितन्त्र प्रवचन

(भाग - २)

(श्रीमद् देवनन्दि अपरनाम पूज्यपादस्वामी द्वारा रचित समाधितन्त्र ग्रन्थ पर अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के शब्दशः प्रवचन)

मगसिर शुक्ल १२, गुरुवार, दिनांक २६-१२-१९७४, श्लोक-७-८-९, प्रवचन-१६

पृष्ठ १९ है। त्रिकाली की बात बाकी है न थोड़ी? यहाँ समाधितन्त्र है, यह अधिकार। आत्मा का धर्म कैसे हो? और समाधि अर्थात् शान्ति कैसे मिले, तो कहते हैं कि यह आत्मा अपनी जाति है। परमात्मस्वरूप चिदानन्द आत्मा है। उसके स्वरूप शुद्ध चैतन्य के सन्मुख होकर जो आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति अन्तर एकाग्रता से प्रगट हो, उसे समाधि कहते हैं, उसे धर्म कहते हैं। उसे मोक्ष का मार्ग कहते हैं। समझ में आया? लोगस्स में नहीं आता अपने? 'समाहिवरमुत्तं दिंतु' सामायिक के पाठ में आता है। पढ़ा है? पण्डितजी!

मुमुक्षु : दुक्ख खहो, कम्म खहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। 'समाहिवरमुत्तं दिंतु' सामायिक में आता है। सामायिक होती है न वहाँ? तुम्हारे तो आता है न पहले से। पहाड़े बोले। आहाहा! 'समाहिवरमुत्तं दिंतु' हे परमात्मा! यह तो स्वयं देखे नहीं परन्तु यह तो अपनी जो भावना है न, इसलिए

कहते हैं, 'समाहि...' आत्मा को पुण्य-पाप के जो भाव होते हैं, वह दु:ख है, अशान्ति है।

यहाँ कहते हैं कि **जीव त्रिकाल ज्ञानस्वरूप है।** आत्मा तो प्रज्ञाब्रह्म चिदानन्द स्वरूप त्रिकाली है। उसकी अन्तर्दृष्टि करके आत्मा में शान्ति का अंश प्रगट करना, उसका नाम धर्म और समाधि और मोक्षमार्ग है। आहाहा! कोई व्रत का विकल्प, तप का विकल्प करता है कि मैं ऐसे उपवास करूँ। वह सब तो राग है। वह कोई धार्मिक क्रिया नहीं है। वजुभाई! त्रिकाली ज्ञानस्वरूप है। आहाहा! नित्यानन्द प्रभु ध्रुवस्वरूप उसको पकड़कर एकाग्र होना, एकाग्र हो, उसका नाम धर्म है। आहाहा! अज्ञानी अपनी चीज़ कैसी है, उसको मानते नहीं। थोड़ा हिन्दी आ गया।

भगवान आत्मा ज्ञान का पिण्ड प्रभु है। ज्ञानस्वरूप। जिसमें शरीर नहीं, कर्म नहीं, वाणी नहीं और जिसमें पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प उठता है, वह राग है, वह भी उसमें नहीं है। आहाहा! ऐसी चीज़ को अन्दर में पकड़ करके... आहाहा! वह आत्मज्ञान। अन्तर में लीन होना उसका नाम धर्म है, वह मोक्ष का मार्ग है। बाकी सब क्रियाकाण्ड करो, लाख-करोड़ व्रत, तप, भक्ति, पूजा, दान और दया, सब राग की क्रिया है। लक्ष्मीचन्दजी! आहाहा! वह तो संसार दे। राग की क्रिया, संसार परिभ्रमण का कारण है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि **जीव, त्रिकाल ज्ञानस्वरूप है। उसको बहिरात्मा...** अन्तर स्वरूप ऐसा है ज्ञानानन्दस्वभाव, उस ओर की नजर के अभाव में... वह चीज़ आत्मा परमात्मस्वरूप अन्दर है। आहाहा! उस तरफ की नजर, दृष्टि छोड़कर, बहिरात्मा अज्ञानवश अपने स्वरूप को जानता नहीं। आहाहा! दूसरे को जानने में प्रवीण। इन्द्रियों द्वारा दूसरे पदार्थों को जानने से दूसरे पदार्थ का ज्ञान होता है। वह भी अपनी पर्याय में अपने कारण से होता है। परन्तु उसमें-पर में ज्ञान को रोकने से अपने आत्मज्ञान से वंचित होता है। अपना ज्ञान करने में वह पराङ्मुख हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? कैसे?

अज्ञानवश नहीं जानता... क्या? भगवान त्रिकाली त्रिकाल स्वरूप ज्ञान, नित्यानन्द प्रभु, वह बहिरात्मा बाह्य को ही अपना माननेवाला अपने में अज्ञानवश उसको (अपने को) जानता नहीं। आहाहा! **और बाह्य इन्द्रियगोचर पदार्थ,...** जो इन्द्रियगम्य बाह्य

पदार्थ है। आहाहा! **जो मात्र ज्ञेयरूप हैं...** ज्ञान में ज्ञेय है। दूसरी चीज़ है। चाहे तो सर्वज्ञ परमात्मा हो या चाहे तो देव-गुरु हो या चाहे तो शास्त्र को, चाहे तो मन्दिर और प्रतिमा हो। सभी... आहाहा! बाह्य इन्द्रियगम्य पदार्थ मात्र ज्ञेयरूप जाननेयोग्य है। बस!

उनमें इष्ट-अनिष्ट की कल्पना करके... अनुकूल पदार्थ देखकर... दूसरी चीज़ है, उसमें कोई अनुकूलता-प्रतिकूलता की छाप नहीं है, ट्रेडमार्क नहीं है कि यह अनुकूल है और यह प्रतिकूल है। वह तो ज्ञेय अर्थात् अपने ज्ञान में जाननेयोग्य चीज़ है। ऐसी चीज़ में दो भाग पाड़ देते हैं अज्ञानी। हैं? **इष्ट-अनिष्ट की कल्पना करके...** शरीर सुन्दर हो तो ठीक, स्त्री सुन्दर-गोरी मिले तो ठीक। ऐसा अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जाननेयोग्य परज्ञेय पदार्थ में दो भाग कर देता है। आहाहा! समझ में आया?

एक ओर भगवान त्रिकाली ज्ञान लिया न? त्रिकाली ज्ञानस्वरूप ही है। और परवस्तु अपने अतिरिक्त शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देव-गुरु-शास्त्र... आहाहा! वे तो ज्ञान में जाननेयोग्य ज्ञेय पदार्थ हैं। जाननेयोग्य वह पदार्थ है। वह पदार्थ इष्ट-अनिष्ट है नहीं। पोपटभाई! ये लड़के होशियार हुए तो बहुत अच्छा हुआ, कमाये। कर्मी जगे। ऐसा नहीं कहते? हमारे बेटे कर्मी हैं। कर्मी अर्थात् कर्म करनार-पाप।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी पैसा कमाता नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, भगवान अत्मा चैतन्य प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप, आनन्दस्वरूप और ज्ञानस्वरूप है। आहाहा! उसके सिवा... अरे! अन्दर में राग हो, पुण्य का भाव हो, दया का भाव हो या पर चीज़ शरीर या कुटुम्ब आदि हो या देव-गुरु-शास्त्र हो, मन्दिर और प्रतिमा हो... आहाहा! वह ज्ञान में ज्ञेय जाननेयोग्य है। ऐसा न मानकर अज्ञानी इष्ट-अनिष्ट की कल्पना करते हैं। यह इष्ट है। हमारे करीबी लोग हैं। पोपटभाई! करीबी लोग हैं। गुप्त बात करनी हो तो हम उसके साथ कर सकते हैं। ...समझ में आया? वस्तु पर है, वह अपने ज्ञान में जाननेयोग्य है। बस! इससे अतिरिक्त वह ऐसा मानता है कि यह चीज़ मुझे इष्ट लगती है, यह चीज़ मुझे अनिष्ट लगती है। बस! वह मिथ्यात्वभाव है। भ्रमभाव है, झूठा भाव है, पापभाव है। चौरासी लाख की योनि में, गन्दगी में उत्पन्न करने का स्थान है वह। आहाहा! समझ में आया?

अनिष्ट की कल्पना करके, अपने को सुखी-दुःखी,... पैसे पाँच-पचास लाख, करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़, दस करोड़ और अरब हमें मिले, हम सुखी हैं। मूढ़ मानता है। पापी, आत्मा के स्वभाव को छोड़कर पर में सुख है और पर से सुख है, ऐसी मान्यता में आत्मा की शान्ति का ह्रास-नाश होता है। समझ में आया? कहते हैं अपने को सुखी। हम सुखी हैं। बाल-बच्चा और लक्ष्मी, व्यापार-धन्धा और हमारा मुनिम भी बड़ा काम का मिला है कि वह हमारा काम बड़ा अच्छा कर लेता है। हम सुखी हैं। तो कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि ऐसा मानते हैं। झूठी दृष्टि उसकी है। सुख तो अपने आत्मा में है। आनन्दस्वरूप है, सच्चिदानन्दस्वरूप है। उसके सुख का तो अनादर करते हैं। और पर में सुख है, पर से (सुख है), वही मिथ्यात्व की दशा आत्मा की शान्ति की हिंसा करनेवाली है।

और अनिष्ट-दुःखी। मैं निर्धन हूँ, मैं बाँझ हूँ, कुँवारा हूँ, कोई साधन नहीं, रोटी का साधन नहीं, स्थान का साधन नहीं-रहने का (साधन) नहीं, मैं दुःखी हूँ। वह भी मूढ़ जीव है। समझ में आया? सुख तो आत्मा आनन्दमूर्ति है। पर में सुख-दुःख मानते हैं, ऐसी कल्पना, वही दुःख है। परवस्तु दुःख का कारण है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

सुखी-दुःखी, धनवान-निर्धन,... लो, ये धनवान आया। मैं धनवान हूँ, मैं पैसेवाला हूँ, मैं गर्भश्रीमन्त हूँ, मैं तो माता के पेट में आया, तब से श्रीमन्त हमारे पिताजी थे। श्रीमन्त के घर हमारा जन्म हुआ। हम धनवान हैं। मूर्ख है, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! धन तो अपने अन्दर में आनन्द और ज्ञानलक्ष्मी से भरा पड़ा आत्मा है। उसका अपना स्वीकार करके धनवान होना, वह अपना धन (है)। वह धनवान छोड़कर लक्ष्मी में मैं धनवान हूँ, मैं निर्धन हूँ... आहाहा! वह अज्ञानी की कल्पना मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया?

मैं बलवान हूँ। मेरा शरीर बलवान बड़ा है। वह नहीं था? कौन? गामा। गामा का सुना था, बहुत जोर (था)। एक मोटर को ऐसे रखे, एक मोटर को ऐसे रखे। दोनों मोटर को खड़ी कर दे। वह मरते समय... क्या नाम बताया? गामा? अखबार में आया

था। पीछे डॉक्टर पहचानवाला बैठा है। मक्खी आयी, मक्खी। अखबार में आया था। कहाँ गया मेरा बल? सुन न! बल तो जड़ की चीज़ है। मैं बलवान हूँ, कहाँ से आया? समझ में आया? वह भ्रम है। मैं आत्मा ज्ञान हूँ, आनन्द हूँ—ऐसा छोड़कर, मैं शरीर से बलवान हूँ, ऐसी मान्यता भ्रम-असत्य है, झूठी श्रद्धा है और झूठी श्रद्धा का फल संसार में रुलना, दु:ख है। आहाहा! समझ में आया?

और मैं **निर्बल...** हूँ। निर्बल तू कहाँ है? वह तो शरीर कमजोर हो जाये। शरीर में कमजोरी हो जाये, वह तो जड़ की दशा है। भगवान आत्मा निर्बल कहाँ है? आहाहा! शरीर की शक्ति कम होने से मैं निर्बल हूँ, ऐसी मान्यता झूठी, पाखण्ड दृष्टिवन्त की है। आहाहा! समझ में आया? और मैं **सुरूप-...** हूँ। सुन्दर... सुन्दर... स्वरूप मेरा है। ये तो मिट्टी-धूल है। धूल का रूप है, वह तो जड़ का है। तेरा है? आहाहा! क्षण में रूप में... ये क्या कहते हैं तुम्हारे? हार्ट-हार्ट (अटेक) । जाओ! ये अभी चल बसे न। शान्तिलाल खुशाल, गोवावाले। ...उसके पास दो अरब चालीस करोड़ रुपये। दो अरब चालीस करोड़। दशाश्रीमाली बनिया था। ऐई! उसके बहन की लड़की यहाँ है न, बालब्रह्मचारी है। दु:खता है। रात को डेढ़ बजे उठा। उसकी बहू को कुछ हुआ था। क्या कहते हैं? हेमरेज कहते हैं न? असाध्य हो गयी थी। तो मुम्बई इलाज के लिये जाये। उसमें स्वयं को ... रात को डेढ़ बजे... बुलाओ डॉक्टर को। वह नहीं थे मुम्बई, भाई! मुम्बई। उसके समधी हैं। कान्तिलाल? कान्तिभाई। कान्तिभाई है न? वहाँ देरासर के पास मकान है। उसने कहा, मैं खड़ा था। इतना बोले, डॉक्टर को बुलाओ। मैं डॉक्टर को बुलाने जाता हूँ, वापस आया तो मर गये। दस मिनिट। धूल भी तेरी चीज़ नहीं है। शरीर तेरा नहीं है तो लक्ष्मी कहाँ से आयी?

मैं **सुरूप**- हूँ। यह तो जड़ की होली है। जड़ की दशा है, यह तो मिट्टी की। मैं सुरूप हूँ, मैं **कुरूप,...** हूँ। आहाहा! ऐसी मान्यता अज्ञानी, परचीज़ जाननेयोग्य एक प्रकार की है, उसमें दो भाग डाल देते हैं। सूक्ष्म बात है, भगवान! यह तो सूक्ष्म बात धर्म की-वीतराग की है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव का फरमान है यह। तो तुम कैसे भूले? जो चीज़ तू ज्ञायक जाननेवाला है, वह चीज़ तो जाननेयोग्य उतनी चीज़

है। उसके अतिरिक्त तुम ऐसा मान लेते हो कि मैं सुरूप हूँ। वह तो जड़ है। वह तो ज्ञान में जाननेयोग्य चीज़ है। ऐसा न जानकर, यह सुरूप ही मैं हूँ, कुरूप ही मैं हूँ। आहाहा! राजा मैं हूँ। बड़ा पाँच-पच्चीस करोड़ की कमाई है महीने की। राजा हूँ बड़ा। हाथी ... धूल में भी नहीं है राजा। राजा कहाँ से आया? तुम तो आत्मा हो। ऐसा छोड़कर अपने को राजा मानता है, वह मूढ़ है। मिथ्या अर्थात् झूठी-असत्य दृष्टि सेवनेवाला है। और झूठ का सेवन करने का फल झूठ होता है।

रंक,... हूँ। मैं तो गरीब हूँ, भैया! गरीब तुम कहाँ हो? तेरा आत्मा तो भिन्न चीज़ है। मैं गरीब हूँ, मेरे घर कोई स्त्री नहीं। हाथ से रोटी करके खाता हूँ। मैं गरीब हूँ। वह उसकी असत्य मान्यता मूढ़ की है। **इत्यादि होना मानता है।**

विशेष :- मिथ्या अभिप्रायवश अज्ञानी मानता है कि... झूठे अभिप्राय श्रद्धा के वश ऐसा मानते हैं। समझ में आया? **मिथ्या अभिप्रायवश...** अभिप्राय अर्थात् श्रद्धा। **अज्ञानी मानता है कि शरीर उत्पन्न होने से मेरा जन्म हुआ,...** शरीर उत्पन्न हुआ तो (कहे), आज मेरी जन्मजयन्ती है। ५० वर्ष, ६० वर्ष पर करते हैं न? जन्मजयन्ती। आज मेरी जन्मजयन्ती है। तेरी जन्मजयन्ती है? शरीर उत्पन्न हुआ उसमें तू आया? वह तो शरीर का जन्म है। समझ में आया? आहाहा!

शरीर उत्पन्न होने से मेरा जन्म हुआ; शरीर का नाश होने से मैं मर जाऊँगा;... मरे कौन? भगवान तो त्रिकाल अविनाशी आत्मा है। उसका जन्म कहाँ और मरण कहाँ? समझ में आया? मैं मर गया, मैं मर जाता हूँ, मैं अब चला जाता हूँ, मर जाता हूँ। आहाहा! मूढ़ मानते हैं, कहते हैं। **मैं मर जाऊँगा,...** देखो! शरीर का नाश होने से मैं मर जाऊँगा। मैं मर गया शरीर का नाश होने से। कौन मरे? बापू! आहा!

शरीर की उष्ण अवस्था होने पर, मुझे बुखार आया... बुखार तो शरीर को आता है। बुखार उष्ण होता है, आत्मा उष्ण है? आहाहा! पाँच डिग्री बुखार आया, मेरा दिमाग घूम गया। ऐई! डॉक्टर के लिये इधर-उधर दौड़ता है। डॉक्टर-डॉक्टर। पाँच डिग्री चढ़ गया, अभी छह-सात हो जायेगा। जल्दी करो... जल्दी करो... दवा लाओ... दवा लाओ। ...शरीर तो जड़ है। उसको बुखार तो जड़ में आया है। तेरे अस्तित्व में है?

तेरे अस्तित्व में आया है? जड़ के अस्तित्व में आया है। आहाहा! खबर नहीं, कुछ खबर नहीं। अन्धे अन्ध चला। अन्धा दिखाये और अन्धा चले। आहाहा! धर्म की खबर नहीं परन्तु सत्य चीज़ क्या है और कैसे मैं पर को मानता हूँ और कैसे मैं अपने को नहीं मानता हूँ। अपने को नहीं मानता हूँ, मालूम नहीं कुछ। कहते हैं कि शरीर की उष्ण अवस्था हुई, मुझे बुखार आया?

शरीर की भूख,... मुझे भूख लगी है। भूख तो जड़ की अवस्था है। तुम तो अरूपी आत्मा भिन्न हो। समझ में आया? **प्यास,...** मुझे प्यास लगी है। आहाहा! मेरा गला सूख रहा है। मौसम्बी लाओ, आईसक्रीम लाओ, अमुक लाओ। आहाहा! प्रभु! तू कौन है, तुझे खबर नहीं, भाई! तुम चैतन्यस्वरूप हो, चैतन्य चमत्कार हीरा है। आहाहा! अन्दर तेरी चीज़ चैतन्य चमत्कार से हीरा भरा पड़ा है। ऐसा तुम अपने को मानते नहीं और यहाँ ऐसा मानता है कि मुझे रोग आ गया, मैं दुःखी हुआ, प्यास लगी। आहाहा!

आदिरूप अवस्था होने पर, मुझे भूख-प्यास लगी; शरीर के कटने से मैं कट गया,... रेल में कट जाता है या नहीं? रेल में। वहाँ मुम्बई में बहुत होता है। मुम्बई में हर रोज एक-दो-तीन-चार मरते हैं बस में। हम तो वहाँ से निकले तो देखा, आदमी मर गया। पुलिस इकट्ठी हुई। सुबह से निकला हुआ शाम को घर आये तो ठीक, वरना समाप्त हो जाता है। मेरा शरीर कट गया। मेरा नाक कट गया, मेरा हाथ टूट गया, मेरा... अवयव टूट गया। वह सब जड़ का है। मिट्टी-धूल है। तो यह अवयव मेरा कट गया और मैं कट गया ऐसा मानना इत्यादि। **इस प्रकार वह अजीव की अवस्था को,...** वह तो जड़ की अवस्था है। वह **अपनी (आत्मा की) अवस्था मानता है।** आहाहा!

अब यह मोक्षमार्ग की बात है थोड़ी। मोक्षमार्गप्रकाशक है न? **अपने को आपरूप जानकर,...** अपना आनन्दस्वरूप ज्ञान, उसको अपना स्वरूप जानकर **पर का अंश भी अपने में नहीं मिलाना...** राग, शरीरादि का अंश भी आत्मा में मिलान करना नहीं। आहाहा! **और अपना अंश भी पर में नहीं मिलाना...** ज्ञान की पर्याय जड़ से हुई है, ऐसे मिलाना नहीं। समझ में आया? **ऐसा सच्चा श्रद्धान नहीं करता।** सच्ची श्रद्धा

सत्य का सत्यरूप से और असत्य की असत्यरूप श्रद्धा करता नहीं और भ्रम से अनादि से परिभ्रमण करता है।

जैसे, अन्य मिथ्यादृष्टि निर्धार बिना... झूठी दृष्टिवन्त निर्णय के बिना **पर्यायबुद्धि से जानपने में...** मोक्षमार्गप्रकाशक। जानपनारूप है न क्षयोपशमज्ञान की पर्याय-विकास। उस जानपने में **व वर्णादि में...** इस शरीर के वर्णादि में **अहंबुद्धि धारण करते हैं,...** जानने की दशा आदि मैं और शरीर की रंग, गन्ध की अवस्था भी मैं। ऐसे मूढ़ जीव, भ्रमणा करनेवाला अज्ञानी ऐसा मानते हैं।

उसी प्रकार यह भी आत्माश्रित ज्ञानादि में... जानने की पर्याय उसमें और **और शरीराश्रित उपदेश-उपवासादि क्रियाओं में...** शरीराश्रित यह उपदेश होता है, वह तो ... जड़ की है। आहाहा! और उपवास। उपवास करने से शरीर ... तो मेरा शरीर कम हो गया। वह सब अवस्था तो जड़ की है। **शरीराश्रित उपदेश-...** मैं उपदेश करता हूँ, उपदेश की वाणी मेरी है। आहाहा! मैं अच्छा भाषण कर सकता हूँ, मैं जोरदार भाषण कर सकता हूँ। मूढ़ है। ये जड़ है। यह भाषा निकलती है, वह जड़ की है। आहाहा!

शरीराश्रित उपदेश-उपवासादि क्रियाओं में अपनत्व मानता है। ...तथा पर्याय में जीव-पुद्गल के परस्पर निमित्त से अनेक क्रियायें होती हैं,... क्या कहते हैं? बोलना, आदि शरीर की क्रिया जो होती है, वह स्वतन्त्र जड़ की, उसमें आत्मा का राग का निमित्त ऐसा जानकर निमित्तमात्र है। तो ऐसा न मानकर मैं बोलता हूँ, मैं चलता हूँ, मैं शरीर का सब उपयोग करता हूँ, लक्ष्मी का सदुपयोग करता नहीं? ...शरीर का सद्उपयोग किया। क्या (किया) ? वह तो जड़ है। उसमें क्या कर सकते हैं? लक्ष्मी का सद्उपयोग (किया)। लक्ष्मी तो जड़ है, अजीव है। उसका सदुपयोग कर सकता है आत्मा? दान देना वह सदुपयोग है। भोग में लेना वह असदुपयोग है। वह बात ही झूठी है। आहाहा! समझ में आया?

सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव का यह आदेश है कि तेरी तुझे खबर नहीं है, भैया! आहाहा! तुम कहाँ अपना मानते हो और अपना क्या है (उसे) तुम दृष्टि में से छोड़ देता है, तुझे खबर नहीं। आहाहा! **उपवासादि क्रिया...** देखो! उपवास

की क्रिया, रसत्याग की क्रिया। रस तो जड़ है। आनेवाला नहीं था तो मैंने छोड़ दिया रस खाने का। वह भी जड़ की क्रिया का अभिमान किया। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भगवान! उसे अनादिकाल से बड़ी भूल हो गयी है। वह भूल निकालने की उसको खबर भी नहीं है और भूल निकले तो कैसा होता है, उसकी खबर नहीं। आहाहा! धर्म की क्रिया करे सुबह सामायिक करे, प्रौषध करे, प्रतिक्रमण करे। वह तो जड़ की क्रिया है, वह कहाँ आत्मा की है? उसमें राग मन्द हो तो वह विकार की क्रिया है। समझ में आया? वह कोई आत्मा की क्रिया नहीं। आहाहा!

उपवासादि क्रियाओं में अपनत्व मानता है। अपनत्व मानता है... तथा पर्याय में जीव-पुद्गल के परस्पर निमित्त से अनेक क्रियायें होती हैं, उन्हें दोनों द्रव्यों के मिलाप से उत्पन्न हुई मानता है;... मैं आत्मा और शरीर की क्रिया दोनों मिलकर हुआ है। शरीर ऐसे चलता है और मैं आत्मा उसका राग करता हूँ, तो दो मिलकर शरीर की क्रिया हुई। मूढ़ है। शरीर की क्रिया में तेरा अधिकार कहाँ है? समझ में आया? और तेरी ज्ञान की क्रिया में पर का अधिकार कहाँ है? जानने की पर्याय में शरीर था, इन्द्रिय है तो मुझे ज्ञान होता है। वह मूढ़ है। परद्रव्य से ज्ञान होता है? ज्ञान तो अपनी पर्याय है। समझ में आया? निमित्त को उड़ा देते हैं यहाँ। आयेगा।

पर्याय में जीव-पुद्गल के परस्पर निमित्त से अनेक क्रियायें होती हैं, उन्हें दोनों द्रव्यों के मिलाप से उत्पन्न हुई मानता है;... यह जीव की क्रिया है। जानना... जानना... जानना... जानना... जानना... वह जीव की क्रिया है। उसमें पुद्गल निमित्त है। फिर भी वाणी आदि पुद्गल की जड़ की क्रिया है, उसमें जीव निमित्त है। **ऐसा भिन्न-भिन्न भाव भासित नहीं होता...** निमित्त का अर्थ 'है', बस इतना। परन्तु मेरे से यह हुआ और उससे मेरे में हुआ (वह अज्ञान है)। आहाहा!

जिसकी मति अज्ञान से मोहित है... अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मज्ञान के भान बिना मति जिसकी मोहित है। **और जो मोह, राग, द्वेष आदि बहुत भावों से सहित है, वह जीव ऐसा कहता है (मानता है) कि ये शरीरादि बद्ध...** समीप है न शरीर, वाणी समीप है। **और धनादि अबद्ध...** लक्ष्मी, धान्य समीप नहीं है। भिन्न है, दूसरे है।

आहाहा! **पुद्‌गलद्रव्य मेरे हैं।** ऐसा मानता है। यह तो पुद्‌गल मिट्टी है, शरीर मिट्टी है, वाणी मिट्टी है, मन अन्दर है। आत्मा विकार करता है तो जड़ मन है रजकण का। उससे मुझे ज्ञान हुआ। ऐसे बद्ध और अबद्ध मेरी चीज़ है। लो, यह धन-धान्य आदि। आदि शब्द से स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, लड़का, लड़कियाँ ये मेरे हैं। ओहोहो! ये लड़का कुछ ठीक है ... ... मेरा नहीं है। परन्तु अन्दर में गुदगुदी होती है कि यह मेरा है। समझ में आया? आहाहा!

बद्ध और अबद्ध चीज़ धान्य-अनाज, शक्कर, गुड़, पकवान, कपड़े, गहने मेरी चीज़ है। यह कोट किसका है? मेरा है। श्रीमद् को ऐसा पूछते तब ऐसा कहते थे, यह कपड़ा किसका? अमारा। अमारा अर्थात्? अ—अर्थात् मेरा नहीं। समझ में आया? अ—मारा है। अ—मारा भाषा ऐसी है कि हमारा है, ऐसा मानते हैं। हमारा (अ-मारा) है। यह यह मेरा नहीं है, ऐसा उसका अर्थ है। आहाहा! **धनादि अबद्ध पुद्‌गलद्रव्य मेरे हैं।** ऐसा मानते हैं।

शरीरादि बाह्य पदार्थों में एकताबुद्धि करने से... शरीर, वाणी, धन, धान्य, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति, उसमें एकताबुद्धि करने से **अज्ञानी को भ्रम होता है कि...** क्या? **रस, रूप, गन्ध, स्पर्श और शब्द का जो ज्ञान होता है, वह इन्द्रियों से होता है...** खट्टा है, फीका है, मीठा है, तीखा है, ऐसा जो ज्ञान होता है न, तो वह ऐसा मानता है कि यह इन्द्रियों से ज्ञान होता है। ये तो जड़ इन्द्रिय है। वह ज्ञान इन्द्रिय से होता है? अपनी पर्याय में होता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है। एक तत्त्व में दूसरे तत्त्व का मिलाप कर देते हैं। वह मिथ्यात्वभाव, मिथ्या दृष्टि, मिथ्यादर्शन को सेवनेवाला है। आहाहा!

अज्ञानी को भ्रम होता है कि रस... जीभ में रस का ज्ञान होता है न? खट्टा है, मीठा है। वह जानता है कि इन्द्रिय द्वारा मुझे ज्ञान हुआ। इन्द्रिय तो जड़ है। ज्ञान हुआ वह तो तेरी पर्याय में हुआ है। वह रस से ज्ञान हुआ है, इन्द्रिय से हुआ है ऐसा है नहीं। आहाहा! भारी! भ्रमणा भारी, भाई! साधु नाम धरावे, रस खाना छोड़ तो भी ऐसा माने कि यह रस खाता हूँ तो रस से ज्ञान मुझे हुआ। मूढ़ है। साधु नहीं, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! स्वरूप के साधन की तो उसको खबर नहीं। मैं आनन्दकन्द सच्चिदानन्द

प्रभु हूँ। मैं परचीज़ को पररूप से जाननेवाला हूँ, अपने को अपनेरूप जाननेवाला हूँ, ऐसा छोड़कर साधु नाम धारण करके भी ऐसा मानते हैं कि ये रस का ज्ञान मुझे इन्द्रिय से हुआ। रस का ज्ञान मुझे इन्द्रिय से हुआ, स्पर्श का ज्ञान मुझे इन्द्रिय से हुआ, गन्ध का ज्ञान मुझे इन्द्रिय से हुआ। मूढ़ है। आहाहा! मूर्ख है। बहुत परीक्षा करने जाये तो मूर्ख का समूह बहुत निकले।

यहाँ तो बात यह है, भगवान! सुन तो सही। तुम ज्ञानस्वरूप हो, चैतन्यस्वभाव हो। तो चैतन्यस्वभाव में जो पर का ज्ञान होता है, वह अपने से होता है। पर से नहीं। समझ में आया? इन्द्रिय से विषयभोग करता है तो स्पर्श जो है, ठण्डा मुलायम, तो मुलायम कहते हैं न? ज्ञान होता है मुलायम का ज्ञान। ऐसा हुआ तो, ये मुलायम है तो उससे मुझे ज्ञान हुआ। मुलायम तो जड़ है। अजीव से ज्ञान होता है आत्मा में? कुछ खबर नहीं। अनादि से भ्रम में पड़ा है। आहाहा! धर्म के नाम पर भी मैं पर की दया पाल सकता हूँ, पर की हिंसा कर सकता हूँ, वह तो भ्रम है। आहाहा! पर तत्त्व की अवस्था मैं कर सकता हूँ, परतत्त्व-पर का जीवन रहा तो उसको मैंने जीवित रखा, समझ में आया? और मैंने उसको मार डाला। किसको मारे? भाई! सुन तो सही। उसकी अवस्था शरीर से भिन्न हो, वह तो उसके कारण से होती है? तेरे कारण से होती है? भारी काम, भाई! कहो, सुजानमलजी! आहाहा!

मुमुक्षु : ये मान्यता कब छूटे?

पूज्य गुरुदेवश्री : माना तो है उल्टा अनादि से। वह मान्यता छोड़े तो छूटे। अपने आप छूटे, ऐसा नहीं। अपने उदाहरण नहीं देते? वृक्ष को आलिंगन करके (मानता है कि) मुझे वृक्ष ने पकड़ किया है। वृक्ष न किया? तुम छोड़ दो तो छूट जाये। परवस्तु को अपनी मानता है तो पकड़ा गया है। वह अपने कारण से पकड़ा गया है। छोड़ दे उसको। मैं तो आत्मा ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ। मैं पर का करनेवाला नहीं, पर का नाश करनेवाला नहीं, पर की रक्षा करनेवाला नहीं और पर से मेरे में ज्ञान होता है, वह भी मैं नहीं। आहाहा! समझ में आया?

तथा घट-पटादि का जो ज्ञान होता है, वह बाह्य पदार्थों से होता है,... ऐसा

मानता है। कपड़ा देखता है न कपड़ा? यह रेशमी कपड़ा है। तो वह रेशमी कपड़ा से रेशमी कपड़ा का ज्ञान हुआ। मूढ़ है। वह तो पर चीज़ है। उससे यहाँ ज्ञान होता है? जिसमें ज्ञान है, उसमें ज्ञान होता है, उसके कारण से ज्ञान होता है। कपड़े में ज्ञान है? **घट-पटादि...** पट अर्थात् वस्त्र। घड़े का ज्ञान होता, वह बाह्य पदार्थों से होता है। उस पदार्थ की अस्ति है तो मुझे उस ओर का ज्ञान हुआ। झूठ है। ज्ञान तो अपनी पर्याय है। अपने में होता है, अपने कारण से होता है। इन्द्रिय से होता है, ऐसा मानना मूढ़ है। आहाहा! आँख फूट जाये तो न देख सके, लो। आँख बराबर है तो जान सकता है या नहीं? जानने का अस्तित्व तो तेरे में है। उसके अस्तित्व से तेरी जानने की पर्याय हुई? ये निमित्त से हुई माननेवाले ऐसे हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

किन्तु उसे ज्ञात नहीं है कि जीव को जो ज्ञान होता है, वह अपनी ज्ञानगुणरूप उपादानशक्ति से होता है। इन्द्रियाँ और घट-पटादि पदार्थ तो जड़ हैं, उनसे ज्ञान नहीं होता; ज्ञान होने में वे तो निमित्तमात्र हैं। उपस्थिति है। परन्तु उससे ज्ञान होता नहीं। ये समय-समय की भूल कैसे कर रहा है, वह बताते हैं। अक्षर पढ़ते हैं तो ज्ञान होता है। अक्षर से हुआ? अक्षर में ज्ञान है? वह तो जड़ है। जिसमें ज्ञान है, उससे ज्ञान से ज्ञान होता है। पोपटभाई! बहुत सूक्ष्म ऐसा। बहुत सूक्ष्म कब बैठे? नहीं बैठे तो भटकेगा चौरासी के अवतार में। आहाहा! **इन्द्रियाँ और घट-पटादि पदार्थ तो जड़ हैं, उनसे ज्ञान नहीं होता; ज्ञान होने में वे तो निमित्तमात्र हैं।**

इस प्रकार बहिरात्मा अपने ज्ञानात्मकस्वभाव को भूलकर... मैं तो ज्ञाता-दृष्टा चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा हूँ। आहाहा! मैं किसी से जाननेवाला नहीं, किसी को बतानेवाला नहीं। आहाहा! मैं भाषा करनेवाला नहीं, मैं शरीर रचानेवाला नहीं, खाने की क्रिया मुझसे होती नहीं। आहाहा! ये तो जड़ है। पीने की क्रिया मुझसे होती नहीं, वह तो जड़ की क्रिया है। आहाहा! कहते हैं, अपना ज्ञानस्वरूप मैं तो चिद्घन आत्मा, मैं प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप हूँ। ज्ञानस्वभाव मेरा है, ऐसा भूलकर, उसको छोड़कर शरीरादि में परपदार्थ में अपना अस्तित्व मानते हैं। अपना होनापना पर शरीरादि में मानते हैं। इन्द्रियों से ज्ञान हुआ तो ... इन्द्रिय मैं हूँ। आहाहा! उससे ज्ञान हुआ, शरीर से हुआ, अक्षरों से हुआ। तो उसका अर्थ वही चीज़ मैं हूँ। ऐसी मान्यता, भ्रम अनादि से सेवते हैं। त्यागी

अनन्त बार हुआ, साधु अनन्त बार हुआ लाखों स्त्रियाँ छोड़कर, परन्तु यह चीज़ उसको समझ में नहीं आयी। समझ में आया?

'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, मुनिव्रत धार अनन्त बार...' मुनिपना हुआ, नग्न दिगम्बर हुआ अनन्त बार। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक...' स्वर्ग में गया। ये ग्रीवा है न, ग्रीवा? उसके स्थान में ग्रैवेयक है वहाँ। लोक है, वह पुरुष के आकार से है। ये चौदह ब्रह्माण्ड पुरुषाकार है। ग्रीवा के स्थान में वैमानिक देव है। उसमें मुनिव्रत लिया, हजारों रानी राजपाट छोड़कर ब्रह्मचर्य शरीर का पाला। वह क्रिया पर की है। 'पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायौ' आत्मा का ज्ञान बिना आनन्द न आया उसको। वह पंच महाव्रत की क्रिया भी दुःखरूप है। बराबर है? लक्ष्मीचन्दजी! पंच महाव्रत दुःखरूप! आस्रव है, दुःख है। आहाहा! पर की दया पालने का राग दुःख है। आहाहा! ऐसी बात है। इसे समझे नहीं, कठिन पड़े। परन्तु क्या करें? मार्ग तो ऐसा है, भाई! तुझे सत्य और असत्य की विवेकता, भिन्नता भासित नहीं हुई। आहाहा! क्रिया आदि की, महीने-महीने के उपवास अनन्त बार किये। छह-छह महीने का उपवास अनन्त बार किया। उसमें क्या आया? वह तो राग की मन्दता है। राग की मन्दता तो पुण्यबन्ध का कारण है। वह कोई अबन्धस्वरूप भगवान मोक्ष का मार्ग नहीं है। आहाहा! बड़ी कठिन बात आयी।

श्लोक - ८-९

तच्च प्रतिपद्यमानो मनुष्यादि चतुर्गतिसम्बन्धिशरीराभेदेन प्रतिपद्यते तत्र -

*नरदेहस्थमात्मानमविद्वान् मन्यते नरम्।
तिर्यञ्च तिर्यगङ्गस्थं सुरांगस्थं सुरं तथा॥ ८॥
नारकं नारकाङ्गस्थं न स्वयं तत्त्वतस्तथा।
अनंतानंतधीशक्तिः स्वसंवेद्योऽचलस्थितिः॥ ९॥

नरस्य देहो नरदेहः तत्र तिष्ठतीति नरदेहस्थस्तमात्मानं नरं मन्यते। कोऽसौ? अविद्वान् बहिरात्मा। तिर्यंचमात्मानं मन्यते। कथंभूतं? तिर्यगङ्गस्थं तिरश्चामङ्गं तिर्यगङ्गं तत्र तिष्ठतीति तिर्यगङ्गस्थस्तं। सुराङ्गस्थं आत्मानं सुरं तथा मन्यते॥८॥

नारकमात्मानं मन्यते। किंविशिष्टं? नारकाङ्गस्थं। न स्वयं तथा नरादिरूप आत्मा स्वयं कर्मोपाधिमंतरेण न भवति। कथं? तत्त्वतः परमार्थतो न भवति। व्यवहारेण तु यदा भवति तदा भवतु। कर्मोपाधिकृता हि जीवस्य मनुष्यादि-पर्यायास्तन्निवृत्तौ निवर्तमानत्वात् न पुनर्वास्तवा इत्यर्थः। परमार्थतस्तर्हि कीदृशोऽसा-वित्याह-अनन्तानन्तधीशक्तिः धीश्च शक्तिश्च धीशक्ती अनन्तानन्ते धी शक्ती यस्य। तथाभूतोऽसौ कुतः परिच्छेद्य इत्याह-स्वसंवेद्यो ''निरुपाधिकं हि रूपं वस्तुनः स्वभावोऽ-भिधीयते''। कर्माद्यपाये चानन्तानन्तधीशक्तिपरिणत आत्मा स्वसंवेदनेन वेद्यः। तद्विपरीतपरिणत्यनुभवस्य संसारावस्थायां कर्मोपाधिनिर्मितत्वात्। अस्तु नाम तथा स्वसंवेद्यः कियत्काल-मसौ न तु सर्वदा पश्चात् तद्रूपविनाशादित्याहअचलस्थितिः अनंतानंतधीशक्तिस्वभावेनाचला स्थितिर्यस्य सः। यैः पुन-र्योगसांख्यैर्मुक्तौ तत्प्रच्युतिरात्मनोऽभ्युपगता ते प्रमेयकमलमार्तण्डे न्यायकुमुदचन्द्रे च मोक्षविचारे विस्तरतः प्रत्याख्याताः॥९॥

---

* सुरं त्रिदशपर्यायैस्तथानरम्। तिर्यञ्च च तदङ्गे स्वं नारकाङ्गे च नारकम्॥३२-१३॥
वेत्त्यविद्यापरिश्रान्तो मूढस्तत्र पुनस्तथा। किन्त्वमूर्तं स्वसंवेद्य तद्रूपं परिकीर्तितम्॥३२-१४॥

अर्थात्, अविद्या (मिथ्याज्ञान) से परिश्रान्त (खेदखिन्न) मूढ बहिरात्मा, देव के पर्यायोंसहित आत्मा को तो देव मानता है और मनुष्यपर्यायोंसहित अपने को मनुष्य मानता है, तथा तिर्यञ्च के अङ्ग में रहते हुए को तिर्यञ्च और नारकी के शरीर में रहते हुए को नारकी मानता है, सो भ्रम है क्योंकि पर्याय का रूप, आत्मा का रूप नहीं है। आत्मा का रूप तो अमूर्तिक हैं, स्वसंवेद्य है अर्थात् अपने द्वारा ही अपने को जाननेयोग्य है। *(श्री ज्ञानार्णव, शुभचन्द्राचार्यः)*

....और उसका प्रतिपादन करके मनुष्यादि चतुर्गति सम्बन्धी चार भेद से जीवभेद का उसमें प्रतिपादन करते हैं —

तिर्यक में तिर्यञ्च गिन, नर तन में नर मान।
देव देह को देव लख, करे मूढ़ पहिचान॥ ८॥
नारक तन में नारकी, पर नहीं यह चैतन्य।
है अनन्त धी शक्तियुत, अचल स्वानुभवगम्य॥ ९॥

अन्वयार्थ - (अविद्वान्) मूढ़ बहिरात्मा, (नरदेहस्थं) मनुष्यदेह में स्थित (आत्मानं) आत्मा को, (नरम्) मनुष्य; (तिर्यङ्गस्थं) तिर्यञ्चशरीर में स्थित आत्मा को, (तिर्यंचं) तिर्यञ्च; (सुराङ्गस्थं) देव के शरीर में स्थित आत्मा को, (सुरं) देव, (तथा) और (नारकाङ्गस्थं) नारकी के शरीर में स्थित आत्मा को, (नारकं) नारकी (मन्यते) मानता है किन्तु (तत्त्वतः) वस्तुतः (स्वयं) स्वयं आत्मा (तथा न) वैसा नहीं है अर्थात् वह मनुष्य, तिर्यञ्च, देव और नारकीरूप नहीं; (तत्त्वस्तु) किन्तु वास्तविकरूप से यह आत्मा, (अनंतानंतधी-शक्तिः) अनन्तानन्त ज्ञान और अनन्तानन्त शक्ति (वीर्य) रूप है, (स्व -संवेद्य) स्वानुभवगम्य है-अपने अनुभवगोचर है और (अचल स्थितिः) अपने स्वरूप में सदानिश्चल-स्थिर रहनेवाला है।

टीका - नर का देह, वह नरदेह। उसमें रहता है, इस कारण नर देहस्थ। वह (नर के देह में रहनेवाला) आत्मा को, नर मानता है। वह कौन (ऐसा मानता है ?) अविद्वान-बहिरात्मा (ऐसा मानता है)। तिर्यञ्च को, आत्मा मानता है। कैसे (तिर्यञ्च) को ? तिर्यञ्चों के शरीर में रहनेवाले। तिर्यञ्च का शरीर, वह तिर्यञ्चशरीर-उसमें रहता है, इस कारण तिर्यञ्चस्थ-उसे (आत्मा मानता है)। इसी प्रकार देवों के शरीर में रहनेवाले (आत्मा) को, देव मानता है।

नारक को आत्मा मानता है। कैसे (नारक को) ? नारकी के शरीर में रहनेवाले को। आत्मा स्वयं नरादिरूप नहीं; कर्मोपाधि बिना वह स्वयं होता नहीं। किस प्रकार ? तत्त्वतः, अर्थात् परमार्थ से वह (वैसा) नहीं, किन्तु व्यवहार से हो तो भले हो। जीव की मनुष्यादि पर्याय, कर्मोपाधि से हुई हैं। उस (कर्मोपाधि) के निवृत्त होने पर / मिटने पर, वे (पर्यायें) निवृत्त होती होने से, वास्तव में (वे पर्यायें, जीव की) नहीं — ऐसा अर्थ है।

तब परमार्थ से वह (आत्मा) कैसा है? वह कहते हैं। वह अनन्तानन्तधीशक्ति अर्थात् अनन्तानन्त ज्ञान और शक्तिवाला है। वैसा वह किस प्रकार जाना जा सकता है — (अनुभव किया जा सकता है) ? वह कहते हैं। वह स्वसंवेद्य है। निरुपाधिकरूप ही वस्तु का स्वभाव कहलाता है। कर्मादि का विनाश होने पर, अनन्तानन्त ज्ञान-शक्तिरूप से परिणत आत्मा, स्वसंवेदन में ही वेदन किया जा सकता है। वह संसार अवस्था में कर्मोपाधि से निर्मित होने से, उससे विपरीत परिणति का अनुभव होता है।

वैसा स्वसंवेद्य (आत्मा) भले हो, किन्तु वह कितने काल? सर्वदा तो नहीं होता, कारण कि बाद में उसके रूप का नाश होता है।(—ऐसी शङ्का का परिहार करते हुए) कहते हैं कि उसकी (आत्मा की) स्थिति अचल है क्योंकि अनन्तानन्तधीशक्ति के स्वभाव के कारण, वह अचल स्थितिवाला है।

जो योग और सांख्यमतवालों ने मुक्ति के विषय में आत्मा की, उससे (मुक्ति से) प्रच्युति (पतन) सम्भव माना है, उसके सम्बन्ध में (खण्डनस्वरूप) प्रमेयकमल-मार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्र में मोक्षविचार प्रसङ्ग में विस्तार से कहा गया है।

भावार्थ - अज्ञानी जीव, जिन नर-नारकादि पर्यायों को धारण करता है, उन पर्यायोंरूप अपने को मानता है। जीव, वास्तव में उन पर्यायोंरूप नहीं है किन्तु वह स्वानुभवगम्य, शाश्वत और अनन्तानन्त ज्ञान-वीर्यमय है। मुक्त अवस्था में (मोक्ष में), उसकी स्थिति अचल है; वहाँ से (मुक्ति से) उसका कभी भी पतन नहीं होता अर्थात् जीव, मुक्त होने के पश्चात् फिर कभी भी संसार में नहीं आता। योग और सांख्यमतवालों की मान्यता इससे भिन्न है।

विशेष स्पष्टीकरण -

बहिरात्मा, नर-नारकादि पर्यायों को ही अपनी सच्ची अवस्था मानता है। आत्मा का वास्तविक स्वरूप उनसे भिन्न, कर्मोपाधिरहित, शुद्ध, चैतन्यमय, टंकोत्कीर्ण, एक, ज्ञाता-दृष्टा है, अभेद्य है, अनन्त ज्ञान तथा अनन्त वीर्य से युक्त है और अचल स्थितिरूप है—ऐसा भेदज्ञान (विवेकज्ञान) उसको नहीं होता; इस कारण वह संसार के परपदार्थों में तथा मनुष्यादि पर्यायों में आत्मबुद्धि करता है—उन्हें आत्मा मानता है।

जीव, जिस-जिस गति में जाता है, उस-उस गति के अनुकूल भिन्न-भिन्न स्वांग

धारण करता है। वे स्वांग, अचेतन हैं - जड़ हैं और क्षणिक हैं। उन स्वांगों को धारण करनेवाला जीव, उनसे भिन्न शाश्वत ज्ञानस्वरूप चेतनद्रव्य है। अज्ञानी को अपने वास्तविक स्वरूप का भान नहीं; इस कारण उस बाह्य स्वांग को ही जीव मानकर, तदनुसार वर्तन करता है।

'अमूर्तिक प्रदेशों का पुञ्ज, प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों का धारक, अनादि-निधन, वस्तु आप (आत्मा) है तथा मूर्तिक पुद्गलद्रव्यों का पिण्ड, प्रसिद्ध ज्ञानादि को से रहित, नवीन जिनका संयोग हुआ है, ऐसे शरीरादि पुद्गल, अपने से पर हैं; इन दोनों के संयोगरूप नाना प्रकार की मनुष्य-तिर्यञ्चादि पर्यायें होती हैं—यह मूढ़ जीव, उन पर्यायों में अहंबुद्धि धारण कर रहा है; स्व-पर का भेद नहीं कर सकता। जो पर्यायें प्राप्त की हों, उसी में अपनापन मानता है;

तथा उस पर्याय में भी जो ज्ञानादि गुण हैं, वे तो अपने गुण हैं और रागादि हैं, वे अपने को कर्मनिमित्त से औपाधिकभाव हुए हैं तथा वर्णादिक हैं, वे अपने गुण नहीं, किन्तु शरीरादि पुद्गल के गुण हैं; शरीरादि में भी वर्णादि का व परमाणुओं का नाना प्रकार पलटना होता है, वे सर्व पुद्गल की अवस्थाएँ हैं, किन्तु उन सबको यह जीव अपना स्वरूप जानता है। उसको स्वभाव-परभाव का विवेक नहीं हो सकता ॥८-९॥'

(मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ ३८)

श्लोक - ८-९ पर प्रवचन

और उसका प्रतिपादन करके मनुष्यादि चतुर्गति सम्बन्धी चार भेद से जीवभेद का उसमें प्रतिपादन करते हैं। ८-९।

नरदेहस्थमात्मानमविद्वान् मन्यते नरम्।
तिर्यञ्च तिर्यगङ्गस्थं सुरांगस्थं सुरं तथा॥ ८॥

नारकं नारकाङ्गस्थं न स्वयं तत्त्वतस्तथा।
अनंतानंतधीशक्तिः स्वसंवेद्योऽचलस्थितिः॥ ९॥

टीका :- टीका है न इस तरफ? **नर का देह, वह नरदेह।** यह देह जड़-मिट्टी। मनुष्य का देह—ये जड़। **उसमें रहता है, इस कारण नर देहस्थ।** देह में रहने से

नरदेहस्थ कहने में आता है। नरदेहस्थ—नर के देह में रहनेवाला। **वह (नर के देह में रहनेवाला) आत्मा को, नर मानता है।** मैं मनुष्य हूँ। आहाहा! यह मनुष्य (देह) जड़ मिट्टी है। आत्मा तो अरूपी भिन्न है उससे। जिसमें रहता है, वह मैं हूँ। किस गाँव का है तू? राजकोट का। कौन-सा गाँव है तुम्हारा? राजकोट। तेरा गाँव होगा? आहाहा! मैं मेरे में हूँ, ऐसी खबर नहीं, इसलिए नरदेह में रहने से मैं नरदेह हूँ। आहाहा! ऐसे अज्ञानी मिथ्यादृष्टि धर्म के नाम पर भी मैं नरदेहस्थ—नरदेह से ... क्रिया करता हूँ। मैं शरीर का सदुपयोग करता हूँ। यह मैं नर हूँ, ऐसा माननेवाला मूढ़ जीव है। समझ में आया? आहाहा!

वह कौन (ऐसा मानता है?) अविद्वान—पाठ ऐसा है न शब्द में? अविद्वान। वह मूर्ख है, ऐसा कहते हैं। चाहे तो ग्यारह अंग पढ़ा हो, नव पूर्व की लब्धि हो, परन्तु नरदेहस्थ—में नर हूँ, मैं देह हूँ और देह की क्रिया मैं करता हूँ, (वह) अविद्वान है। अविद्वान है। आहाहा! भाषा यह है। '**नरदेहस्थमात्मानमविद्वान् मन्यते नरम्।**' आहाहा! **वह कौन (ऐसा मानता है?) अविद्वान—बहिरात्मा...** जो देह में रहने की चीज़ है तो मैं भिन्न हूँ। मैं देह में रहा हूँ, ऐसा भी नहीं। मैं तो मेरे में हूँ, ऐसा न मानकर, नरदेह में मैं रहा हूँ शरीर में (ऐसा मानता है)। आहाहा!

कलश होता है न? काशीघाट का कलश। लोटा। उसमें पानी है न? ऐसे आकार से पानी रहता है न? नीचे थोड़ा छोटा आकार होता है। पानी का आकार भी ऐसा होता है अन्दर में। पानी का आकार कलश के कारण नहीं। कलश का आकार कलश में और पानी का आकार पानी में है। इस प्रकार ये काशीघाट का कलश-लोटा। लोटा-लोटा नहीं समझते? लोटा कहते हैं न? वैसे ये लोटा है न। ये काशीघाट का लोटा है। ... ऐसा होता है न? यह भी ऐसा होता है। काशीघाट का लोटा ऐसा कहते हैं हमारे यहाँ गुजराती में। जैसे उसमें पानी होता है जल-जल। तो जल का आकार जल में है। लोटे में नहीं। और लोटे का आकार लोटे में है, जल में नहीं। ऐसे यह शरीर का आकार है, वह शरीर में-जल में है। आत्मा अन्दर जो है, वह अपना आकार भिन्न रखता है। आहाहा! पानी पानी में है। पानी लोटे में नहीं। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भगवान!

जल में जल है। जल लोटे में नहीं। लोटा तो जड़ है, दूसरी चीज़ है। ऐसे आत्मा आत्मा में है, शरीर में नहीं। शरीर तो जड़ मिट्टी है। परन्तु ऐसा विचार करने का कहाँ समय है? कमाना, खाना, भोगना मरकर फिर जाना चौरासी में भटकने। ऐसा विचार करने के लिये समय कहाँ है? आहाहा! हिम्मतभाई! ऐसा कहते हैं। नहीं?

बहिरात्मा (ऐसा मानता है)। तिर्यञ्च को, आत्मा मानता है। तिर्यंच का शरीर है न? हाथी-घोड़ा। उसमें आत्मा है तो मैं उसमें रहता हूँ तो मैं हाथी ही हूँ, मैं घोड़ा ही हूँ। आहाहा! लट, चींटी, कौवे में उत्पन्न होता है न? अपनी चीज़ भिन्न है, ऐसी खबर नहीं। तिर्यंच के शरीर में रहनेवाला हूँ तो वही मैं हूँ। शरीर ही मैं हूँ। आहाहा! कीड़ा, कौआ, कुत्ता—ऐसे भव अनन्त किये, अनन्त किये। आहाहा! भूल गया। अनन्त भव। अनादि काल का आत्मा तो है। कोई नया हुआ है? तो रहा कहाँ? अनन्त भव (किये)। समझ में आया? अनेक कमरे में जैसे एक जलता दिया ले जाये, अनेक कमरे में दीपक तो दीपक में है। कमरे में नहीं। वह दीपक तो ऐसे चलता है। समझ में आया? दीपक जड़ है तो क्या माने? यह तो चैतन्य है न। ऐसे शरीर के कमरे अनन्त किये। उसमें से एक देह में से दूसरे देह में। जहाँ-जहाँ रहा वहाँ वह मैं हूँ, ऐसा उसने माना। मैं चैतन्य दीपक तो अन्दर में पर को स्पर्श किये बिना और पर में रहे बिना मैं तो एक भव से दूसरे भव में गति करनेवाला चैतन्य हूँ। समझ में आया? ऐसा न मानकर... आहाहा! तिर्यंच के शरीर में आत्मा (गया तो) मैं तिर्यंच हूँ।

एक राजा की बात आती है। राजा को कहा किसी ऋषि मुनि ने, तुम्हारी सात दिन में मृत्यु है। हें! कहाँ उपजूँगा? तेरी कुतिया है उसमें तू जन्म लेगा। गलुडिया को क्या कहते हैं तुम्हारे में? पिल्ला। आहाहा! देह की स्थिति पूरी होने का (समय) आ गया है। अभी तो तू निरोग हो। कुछ समय में देह छूट जायेगा। कहाँ जाऊँगा? कुत्ता। कैसा? कपाल में सफेद... होता है न? ऐसा होगा। नौकर को हुक्म किया कि, मैं जब जन्म लूँ तो मुझे मार डालना। मैं उसमें नहीं रह सकूँगा। वहाँ जन्म लिया। मारने जाये तो भागे। नहीं। आपने कहा था। लेकिन उसको कहाँ भान है। अभी तो कुछ भान है नहीं। इस प्रकार जहाँ-जहाँ देह में गया, वहाँ-वहाँ अपने को मानकर वहाँ से छूटने की भावना की नहीं। ओहोहो!

अनन्त काल से भटक रहा विना भान भगवान।
सेवे नहि गुरु संत को छोड़ा नहीं अभिमान॥

आत्मसिद्धि में आता है। श्रीमद्।

अनन्त काल से भटक रहा विना भान भगवान।
सेवे नहि गुरु संत को छोड़ा नहीं अभिमान॥

हम जानते हैं, हमको मालूम है। ऐसा-ऐसा अभिमान करके चौरासी के अवतार में चला गया।

यहाँ कहते हैं कि भगवान! तुम तिर्यंच में गये तो तिर्यंचपना माना। **(ऐसा मानता है)। तिर्यञ्च को, आत्मा मानता है। कैसे (तिर्यञ्च) को ? तिर्यञ्चों के शरीर में रहनेवाले। तिर्यञ्च का शरीर, वह तिर्यञ्चशरीर-उसमें रहता है, इस कारण तिर्यञ्चस्थ-उसे (आत्मा मानता है)। इसी प्रकार देवों के शरीर में रहनेवाले (आत्मा) को, देव मानता है।** बहुत पुण्यादि की क्रिया की हो तो देव में जाता है। परन्तु वह गति है भटकने की। देव भी दुःखी है। आहाहा! यहाँ पाँच-पाँच करोड़, पच्चीस करोड़, दो अरबवाले या ज्यादा लक्ष्मीवाले हैं, वहाँ बड़ा बँगला क्या कहते हैं ? भवन है। परन्तु है दुःखी बेचारे देव। समझ में आया ? आहाहा! **देव मानता है।** देव के शरीर में जाये तो देव माने। देव हूँ, सुन्दर हूँ, वैक्रियकशरीर करनेवाला हूँ। आहाहा! मैं आत्मा ज्ञानस्वरूप हूँ। वह देह नहीं। देव मैं नहीं, मैं मनुष्य भी नहीं, तिर्यंच भी नहीं, ऐसा न जाना।

नरक को आत्मा मानता है। नारकी नीचे है न ? बहुत पाप किये हों, माँस खाया, शराब पी, परस्त्री का सेवन (किया)। बहुत पाप करता है तो मरकर नरक में जाते हैं। नीचे नरक है, हों! कल्पना नहीं। नीचे नरकगति है। ... हजार योजन नीचे नारकी असंख्य हैं। अनन्त बार माँस, शराब का सेवन तो मरकर नरक में गया। तो ऐसे नरक के भव भी अनन्त किये हैं। समझ में आया ? मनुष्यपना का भव भी अनन्त किया। इससे नारकी का भव अनन्त किया। असंख्यगुना अनन्त। अनन्त किया उससे। और उससे देव का भव असंख्यगुना किया। अनन्त असंख्यगुना। ओहोहो! वहाँ से मरकर आलू-बटाटा, शक्करकन्द, कन्दमूल, प्याज उसमें जीव है। वहाँ गया तो अनन्त भव किये।

स्वर्ग के भव से अनन्त भव किये उसमें। आहाहा! ये चार गति का जोड़, अनन्त काल में अभी तक रहा उसका। समझ में आया?

कहते हैं, नरक में गया तो, मैं नारकी। आहाहा! मुझे मारते हैं, पीटते हैं। यम होता है न यम? एक रोगी था, एक आदमी बहुत रोगी (था)। उसकी सेवा करनेवाला बड़ा भाई था। तो अण्डा, माँस लाकर खिलाता था। माँस को खिलानेवाला था, वह मरकर नरक में गया। और वह माँस जो खाता था, परन्तु वह खिलाता था, वह वहाँ यम हुआ। नारकी में यम। देव का होता है न? यम होता है। तो यम उसको मारता था। तो कहता था कि अरे! मुझे? तेरे लिये मैंने पाप किया था। पाप किया, मैंने तेरे लिये किया था। मैं तो पापी हूँ। आहाहा! समझ में आया? मारनेवाला उसको मारता था। आहाहा! अरेरे! तूने मुझे पाप करवाया, खिलाया। आहाहा! जिसने खिलाया, वह मरकर नरक में गया। और जिसने खाया, वह यम हुआ। यम उसको मारता है। दो भाई। अनन्त बार हुआ, इसमें क्या बात है? अपनी चीज़ की खबर नहीं और मिथ्यात्वभाव से सब भव किये। मिथ्यात्वभाव छोड़ना और अपने आत्मा का भान करना। उसका...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)